SUSHANT UNIVERSITY ORGANIZED INTERNATIONAL CONFERENCE ON
"ADVANCES IN MULTIDISCIPLINARY RESEARCH AND INNVOATION" ICAMRI-2023
ON 28-29TH OCTOBER 2023
INTERNATIONAL ADVANCE JOURNAL OF ENGINEERING, SCIENCE AND MANAGEMENT (IAJESM)
July-December 2023, Submitted in October 2023, iajesm2014@gmail.com, ISSN -2393-8048
Multidisciplinary Indexed/Peer Reviewed Journal. SJIF Impact Factor 2023 =6.753

'दूधनाथ सिंह की कहानियों के पात्रों पर परिस्थियों का प्रभाव'

कांता देवी, शोधार्थी, हिंदी विभाग, श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़, राजस्थान।

शोध आलेख सार

दूधनाथ सिंह की 'उत्सव' कहानी वर्तमान परिस्थितियों में, विषमताओं के बीच उन्हें भुगतते हुए पांच बेकार युवकों की ऐसी कहानी है जिसमें उन युवकों को लगता है उनकी सारी शक्तियों पर जंग लगता जा रहा है– वे बहुत कुछ करना चाहते हैं– जिससे उन्हें अपनी उपयोगिता और सार्थकता के प्रति विश्वास हो जाए लेकिन खूब गहरी उत्तेजना और रोमांच भरे कार्य ही अब उन्हें तुष्टि दे सकते हैं– कहानीकार एक गहरे ह्यूमर के साथ उनकी हरकतों का ब्यौरा देता है। महज तेज हलचल और सनसनाहट भरी गहमागहमियां ही आज के आदमी को कहीं कुछ होने का अहसास देती हैं– अन्यथा उसे इतनी बड़ी दुनिया में अपना अस्तित्व धीरे–धीरे भरता हुआ–खत्म होता हुआ लगता है।

प्रस्तावना

उन सभी को लगा कि स्थिति अब काबू से बाहर हो चुकी है– ऐसे वे कतई नहीं हो सकते पिछड़े कई दिनों से वे सभी किसी घटना की फिराक में सड़कों पर इधर–उधर घूम रहे थे..... वे चिड़चिड़ा रहे थे और उनके चेहरे लटक जाते थे, न कहीं कोई हल्ला–गुल्ला, न गुंडई, न हड़ताल, न चोरी–डकैती, न मारपीट सेवा का कोई अवसर नहीं, जौहर दिखाने के लिए कोई दुर्घटना, कोई वारदात नहीं ना उम्मीदी के इस उदास और निहत्थे माहौल में वे और ज्यादा नहीं कर सकते थे। वे बुरी तरह ऊबे, घबराए और उदास थे– उन्हें लगता कि उनकी उम्र बेकार ही बीत रही है। उनकी योग्यताएं व्यर्थ है और दरअसल वे किसी काम के नहीं रह गए हैं।[1]

इतने अच्छे लोग, आश्चर्यजनक रूप से विनम्र, निरभिमानी, परोपकारी, निःस्वार्थी और चुपके–चुपके महान (स्वामी विवकोनद) और इतना खाली वक्त, उत्साह, सहयोग और सदीच्छा इस सारी स्थिति में अग वे सभी उदास हो गए हों और बोरियत उनके कानू से बाहर चली गई हो तो स्वर्गीय नेहरू जी के शब्दों में क्या यह एक अहम मसला नहीं है, और पब्लिक है कि हर जगह ठट्ठा कर रही थी– और लोग हैं कि परचूना की दुकान पर भीड़ लगाए रहते या गली में बैठकर आरा से पेशाब करने की जुगत भिड़ाते रहते या सांड से बचकर निकल जाने में सारी बुद्धि लगा देते।[2]

कहानीकार इसी सपाट मगर तीखी भाषा के साथ स्थितियों की हास्यास्पदता और युवकों की बेचैनियों का व्यंग्य भरा चित्रण करता है– कहीं कुछ नहीं हो रहा है इतनी बड़ी तकलीफ नहीं है जितनी इसके पीछे छिपी हम कुछ नहीं है– किसी योग्य नहीं हैं की पीड़ा। कहा जा सकता है, कि उत्सव कहानी भी सारी हलचलों, भीड़ की रोजमर्रा हरकतों के बीच भी खालीपन और निरर्थकता को तीव्रता से अनुभव करते हुए ऐसे लोगों की कहानी है जो अपनी असमर्थता के बोध से मुक्त होना चाहते हैं– इस मुक्ति की आकांक्षा में, हाथ–पांव मारते हैं अंततः वे ऐसे क्रूर किस्म के काम में अपने को लीन करके खुश हो लेते हैं– जिसकी परिणति उससे भी ज्यादा निर्मत घटना में होती है– मृतक–सेवा–संस्थान खोलकर लाशों के लिए वे जिस तरह घूमते हैं बहुत विद्रूप भरी मुस्कुराहटों और ठहाकों के बीच लाशों के बारे में बातें करते हैं।[3] शहर की हरियाली और स्वतंत्रता से वे दुखी होते हैं, साफ धुली सड़कों पर उन्हें गुस्सा आता है।[4] लेकिन लाशें दफनाते और जलाते–जलाते ही जब एक दिन उनका साथ भी दम तोड़ देता है तो लोग उन पर वहशी जानवरों की तरह गुर्राते हैं और वे आतंकित त्रस्त और सहमे हुए फिर अपनी उन्हीं बेचैनियों के साथ अकेले रह जाते हैं– एक लम्बा चिलचिलाता हुआ रेतीला मैदान........कभी भक्क से जलता हुआ कभी अंधेरा और फिर–झिराती नदी और धुआं और अंधेरी बारिश में धुंधलाती आग और उसमें ढेर सारे बूढ़े–अपाहिज जवान, बच्चों, औरतों के कंकाल.........।[5] ये भयावह बोध वर्तमानी सारी व्यवस्था के प्रति तिलमिला उठने के गुस्साते हुए आवेश में वे फूटते हैं और कहानी अंततः मौजूदा स्थितियों में आक्रांत महसूस करने और निरर्थकता से, अपने को साबित न कर सकने की पीड़ा से मुक्ति

1. 'उत्सव' –सुखांत– पृ. 49–50
2. वही, पृ. 53

3 'उत्सव' –सुखांत– पृ. 59–61, 64
4. 'उत्सव' –सुखांत– पृ. 68
5. 'उत्सव' –सुखांत– पृ. 72

की अजहद छटपटाहट की कहानी बन जाती है। लेकिन मुक्ति होती नहीं– केवल उसकी तीव्र और अमानवीय क्रियाएं हैं जिनकी क्रूर रोमांचकारी उत्तेजनाओं में आदमी अपने को–अपने कुंठित अस्तित्व के बौध से भुलाए रखना चाहता है।

विजेता कहानी भी अपने होने को सिद्ध करने की, अपने अस्तित्व की सार्थकता को प्रतिष्ठित करने की तीव्र आकांक्षा की कहानी है– वह लड़की के लिए गाड़ी का सफर करता है– और अपने प्रतिद्वंद्वी व्यक्ति के सामने अपने होने को साबित करना चाहता है हालांकि यथास्थिति यह है कि उसके भीतर आत्मविश्वास की सारी संभावनाएं दम तोड़ चुकी है और वह महज भटक रहा है– मैं टूटने और खत्म होने की हद पर आ गया हूं– शायद। मैं बिल्कुल नरकंकाल रह गया हूं– कुछ इस तरह कि मुझे खुद ही यकी नहीं होता कभी अचानक शीशे में नजर पड़ गई तो बुझ जाता हूं– कि यह मैं नहीं हूं, यह मैं हो ही नहीं सकता। मैं जानता हूं लेकिन मैं भागता रहता हूं। और वह खूंखार, दयनीय, टूटता हुआ अपना ही नर–प्रेत हर क्षण मेरा पीछा किया करता है।[6]

सारी वैयक्तिक बेचैनियों के बीच भी उसे अपने बाहर की सारी विद्रूपताओं का पूरा एहसास है– अचानक ही मुझे एक मजाकिया ख्याल आया कि यह भारत देश है, जहां मैं पैदा हुआ हूं और मरूंगा और जहां यह रेल चलरही है और जहां मेरी हड्डियां सूखकर ठनठन बोल रही है।[7] जहां अक्सर जब प्रतिकार संभव नहीं होता वहीं कानून बन जाता है।[8] जहां नृशंसता बीमारी की तरह फैल गई है क्योंकि लोग प्रायः कायर है।[9] जहां आदमी की महज भेड़–बकरियों की हैसियत का ही अपना होना[10] महसूस होता है। इस सारी बदमजा असलियतों के बीच आदमी के अस्तित्व बोध का जिंदा रहना मुश्किल है। यही कारण है कि विजेता का मैं उस लड़की को उपलब्ध करने की छटपटाहट में से महज इस लिए गुजरता है कि उसे लगे व कुछ है कि वह अपनी सार्थकता को प्रतिपादित कर सके। मुझे बराबर लगता था अब वह सिर्फ एक माध्यम रह गई है। एक प्रतीक जिसके मिल जाने से मेरी सारी मान्यताएं या सिद्धांत या मेरे व्यक्तित्व का बहुत महत्वपूर्ण अंश प्रभावित हो जाएगा। नहीं तो यह कि मैं कुछ भी नहीं था– सिर्फ खुंख्ख, व्यक्तित्वहीन, आवारा, चरित्रहीन, प्रतिभाहीन, टुच्चा और व्यर्थ। यह चुनौती। मुझे अचानक ही लगा यह प्रेम की स्थिति तो एकदम नहीं है। बल्कि उससे बड़ी स्थिति है। ज्यादा कठिन और खूंखार। यह सिर्फ एक लड़की को पाने और लेने का सवाल नहीं है। यह तो यह है कि अगर वह मिलती है तो आप है और अगर नहीं मिलती है तो आप नहीं है।

वह निरंतर उस अपने प्रतिद्वंद्वी से एक हावी होते हुए भयावह–बोध से आक्रांत होता रहता है। उसे धड़कती हुई सांसों से यह अंदेशा रहता है कि कहीं वह मात न खा जाए और वह कुछ भी न रह जाए। उसका होना सिर्फ व्यक्तित्वहीन, आवारा, चरित्र–रहित जैसे बदनाम विश्लेषणों में कैद हो जाए। अपने इस भयावह बोध से मुक्ति पाने के लिए और निज के अस्तित्व को प्रभावित करने की चुनौती को जीत लेने की खातिर वह प्रेम का नाटक करता है जबकि अंदर ही अंदर वह भयभीत और आशंकित रहता है। मैं........दिनभर शराब पीकर उस लड़की के खेतों का इंतजार करता और थरथराता हुआ उसे लंबे और भयावह गिलगिले खत लिखता...............या चौरंगी में बुत, थका हुआ मारा–मारा फिरता फिर डर की उसी मनःस्थिति में जो पहली गाड़ी मिलती उसे रवाना हो जाता जब वह आती तो थका, मांदा, ऊबता हुआ उसे भयावह रूप से प्यार करता– या प्यार करने का अद्वितीय नाटक करता, कुछ इस तरह की उसके दिमाग की बिल्कुल सफाई हो जाती है और वह किलकती हुई और दुश्मन पर कुढती हुई घर लौट जाती।[11]

लेकिन रास्ते में वह टिकट का झौला गंवा कर सिपाहियों के हथकंडे में फंस जाता है और कहानी एक दूसरे स्तर पर व्यवस्था की सारी मौजूदा अव्यवस्थाओं और स्वार्थी टुच्चेपन को रिवील करती है– मैंने अपने इर्द–गिर्द देखा। अपनी नजर में वह सिर्फ एक बहाना था– झूठ था– एक हास्यापद झूठ।

6. 'विजेता' –सुखांत– पृ. 77
7. विजेता – सुखांत – पृ. 76
8. विजेता– सुखांत– पृ. 81
9. विजेता– सुखांत– पृ. 83
10. विजेता– सुखांत– पृ. 84
11. 'विजेता' –सुखांत– पृ. 88–89

स्थितियां किस तरह आदमी के सच को झूठ में बदल देती है और आप चिल्लाते रहिए कोई यकीन नहीं करता। लोग सिर्फ हंस देते हैं या टाल जाते हैं या और जोर से कहते हैं– झूठा साला।[12]

बावजूद सारी चरित्र–रहितता और मूल्यहीनताओं के मानवीयता के प्रति फिर भी उसके मन में एक आस्था है– आस्था भी नहीं तो एक संवेदनशील रग है जो एक निरपराध व्यक्ति को सिपाहितयों के जाल में देखकर तडप उठती है और वह अपने बचने की संभावनाओं को ठोकर मारकर हथकड़ियों मंजूर कर लेता है– उसकी अंतिम अनुभूति लेकिन बहुत ही बेबाक तरीके से अपनी सारी उपलब्धि को बेवकूफी समझने की है– यह प्रकारान्तर से स्थितियों की उस निर्ममता को व्यक्त करती है जहां आदमी चाहते हुए भी ईमानदार नहीं रह सकता और रहता है तो अपने सामने बेईमानियों का हुजूम देखकर अपनी अकेली ईमानदारी पर उसे दया आने लगती है और अंततः उसी भीड़ में शामिल हो जाने की मनोवृति भड़क उठती है क्योंकि भीड़ से अलग दिखने का मतलब है– नितांत अकेलेपन और असहायता को सारी यंत्रणा को झेलना लेकिन जब सारा परिवेश ही भ्रष्ट हो तो अपनी ईमानदारी की अकेली अहमियत बहुत बड़ी और महत्वपूर्ण नहीं लगती–फिर मैं सुन्न पड़ने लगा और मुझे शर्म–सी महसूस होने लगी फिर एक घातक जहर मेरी नसों में रेंगने लगा और धीमे–धीमे एक गहरे दुख और पछतावे ने मुझे निगल लिया।

इस प्रकार विजेता कहानी अपने व्यक्तित्व को प्रतिष्ठित करने की और अस्तित्व की फिजूलता की संत्रासमयी अनुभूति से मुक्ति की आकांक्षा की कहानी है जो आखिर में कहीं नहीं ले जाती। मानवीयता की जमीन पर खड़े होकर भी अपने को बहुत ही उखड़ा हुआ तथा अजनबी अनुभव करने की दर्द भरी परिणति इस स्वात्ंत्र बोध की विवश–संभावनाओं को सामने लाती है– जो टकराहटें अनुभव करते हुए भी अंततः भीड़ में शामिल हो जाने के लिए विवश है।

12. 'विजेता' –सुखांत– पृ. 90